श्री मधुसूदन ओझा समीक्षा चक्रवर्ती

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
समन्वयक
वैदिक हैरिटेज एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

जयपुर राजसभा प्रधान, समीक्षा चक्रवर्ती, महामहोपदेशक, स्वर्गीय पण्डित प्रवर विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझा जयपुर के संस्कृत साहित्याकाश में देदीप्यमान सूर्य हैं। वस्तुविज्ञान इस शताब्दी के वैज्ञानिकों का विशेषतः विवेच्य रहा है और इसी वस्तुविज्ञान का विवेचन वैदिक ग्रन्थों के उद्धरणों से प्रस्तुत करने का श्रेय श्री ओझाजी को रहा है। प्रवर्तमान इस शताब्दी के वैज्ञानिकों को स्वप्न में भी नहीं था कि आधुनिक वस्तुविज्ञान की बहुत-सी उलझनें वैदिक साहित्य के माध्यम से भी सुलझ सकती हैं। श्री ओझा ने अपना पूर्ण जीवन वैदिक विज्ञान एवं वैदिक इतिहास के अन्वेषण में लगा दिया था।

श्री ओझा का जन्म मिथिला देश के मुजफ्फरपुर जिले में 'गाढ़ा' नामक ग्राम में भाद्रपद कृष्णाष्टमी (जन्माष्टमी) संवत् 1923 को हुआ था। यह ग्राम रेलवे स्टेशन सीतामढ़ी से दक्षिण की ओर करीब 10 मील की दूरी पर विद्यमान है। आपके पिता का नाम पं. श्री वैद्यनाथ ओझा था। आपके पितामह पं. देवनाथ ओझा मझोलिया राज्य के प्रधान पण्डित थे। आपका कुल एक विद्वत्कुल रहा है। आपके कुटुम्ब में सन्निहित पितृव्य पं. श्री तुलसीदत्त ओझा भी एक प्रकाण्ड पण्डित थे, जो काशी में रहते थे। व्याकरण में नवीन युग के निर्माता दाक्षिणात्य विद्वान् श्री काशीनाथ शास्त्री भी श्री तुलसीदासजी को ही विशिष्ट विद्वान् मानते थे। आप मन्त्रशास्त्री भी थे। आपने 'शारदा तिलक' पर एक टिप्पणी भी लिखी थी। आपके पितृव्य श्री राजीवलोचन ओझा जयपुर राज्य में सम्मान प्राप्त कर चुके थे।

श्री राजीवलोचन ओझा के कोई पुत्र न था, अतः उन्होंने श्री मधुसूदन ओझा को अपना पुत्र स्वीकार किया और आपका 9 वर्ष की अवस्था में संवत् 1932 में जयपुर आगमन हुआ। उस समय तक आपने कोष आदि की साधारण शिक्षा प्राप्त की थी। जयपुर आकर पहले आप भाषा ज्ञान के उद्देश्य से प्राइवेट अंग्रेजी व फारसी का अध्ययन करते रहे। इन भाषाओं के साधारण ज्ञान के पश्चात् आपने नियमित रूप से संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ किया। आपको बहुत ही विद्वान् व्यक्तियों से पढ़ने का सौभाग्य मिला। मिथिला के सुप्रसिद्ध एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् पं. विश्वनाथ झा जो सभी शास्त्रों के ज्ञाता होने के साथ ही मन्त्रशास्त्र में भी अप्रतिहत शक्ति रखते थे, आपको व्याकरण पढ़ाते थे। आपने महाराज संस्कृत

कॉलेज, जयपुर में प्रवेश प्राप्त किया और तत्कालीन अध्यक्ष काशी के सुप्रसिद्ध भाष्यब्रह्मचारी श्री विभवरामजी के सुयोग्य पुत्र श्री रामभजजी सारस्वत से सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया। आप जन्मतः प्रौढ़ तथा अध्ययनशील होने के साथ-साथ प्रतिभाशाली भी थे। 14-15 वर्ष की अवस्था में जब आप सिद्धान्तकौमुदी पढ़ रहे थे उसी समय आपके पितृव्य पं. श्री राजीवलोचन ओझा का स्वर्गवास हो गया। इस दुर्घटना से आपका जीवन परिवर्तित हो गया। आपको अपनी पितृव्यपत्नी के साथ संवत् 1939 में अपनी जन्मभूमि मिथिला लौटना पड़ा। आपने अपना शेष अध्ययन काशी में प्रारम्भ किया। आपकी विचित्र प्रतिभा और मिश्रसदृश अलौकिक विद्वान् गुरु का योग 'रत्नं समागच्छतु कांचनेन' का निर्देशन उपस्थित करने में सहायक हुआ। श्री शास्त्रीजी सदृश विद्या कल्तरु का आश्रय प्राप्त कर आपकी प्रतिभा वल्लरी असाधारण रूप से विस्तृत एवं विकसित होने लगी। आपका असाधारण अध्यायनोत्साह एवं चमत्कृत बुद्धिवैभव देखकर श्री शास्त्रीजी ने आपको अपना पट्टशिष्य बना लिया। आपने उनके सान्निध्य में रहकर मनोयोगपूर्वक शास्त्राध्ययन किया। इस प्रकार व्याकरण, न्याय, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त आदि मुख्य मुख्य सभी ग्रन्थों को न केवल गुरुमुख से अध्ययन ही किया, उन पर पूर्ण रूप से अधिकार भी प्राप्त कर लिया। काशी में रहते हुए ही आपके शास्त्रार्थ व विषय निरूपण शैली आदि की अच्छी प्रसिद्धि हो गई थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् भी आपको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। एक बार मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री बच्चा झा के साथ आपका 'खण्डखण्डखाद्य' पर विचार-विमर्श हुआ था और आपकी विजय हुई थी। उन दिनों आर्यसमाज अपना प्रभाव चारों ओर फैला रहा था। आर्यसमाज के प्रचारक व्याख्यानों द्वारा सनातन धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन करने में संलग्न थे। विक्रम संवत् 1945 की बात है आपके गुरु पं. श्री शिवकुमार मिश्र एक सभा से लौटकर आये और उन्होंने शास्त्रीजी को आदेश दिया मैं आज बहुत खिन्न हूँ। तुम सत्य वैदिक सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने का कार्य करो। तुममें इस काम की शक्ति है। हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हें वैदिक अर्थों का यथार्थ प्रतिभान होगा। आपने भी उन्हीं के समक्ष वैदिक विवेचन में जीवन लगाने की प्रतिज्ञा की।

आप पं. राजीवलोचन झा के उत्तराधिकारी थे, अतः जीविका सम्बन्ध होने के कारण जयपुर आना पड़ता था। अध्ययन समाप्त कर जब आप एक बार जयपुर आये तो सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान् पं. हरिदास बाबू ने, जो तत्कालीन शिक्षा विभागाध्यक्ष थे, आपको महाराजा कॉलेज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त करना चाहा, किन्तु आपकी ज्ञान पिपासा अभी शान्त नहीं हुई थी और इसीलिए आपने उक्त पद को स्वीकार करने में आनाकानी की। आप चुपचाप भ्रमण करने चल दिये। सर्वप्रथम बूँदी पहुँचे, जो उस समय छोटी काशी के नाम से विख्यात थी। वहाँ आप विद्यावाचस्पति पं. गंगासहायजी से मिले, जो तत्कालीन अमात्य थे। वहाँ एक तैलंग भट्ट नैयायिक से आपका शास्त्रार्थ भी हुआ। वहाँ से पूर्ण सम्मानित होकर आप कोटा, झालरापाटन, नीमच, रतलाम आदि अनेक स्थानों पर गये। रतलाम

में प्रवास कर रहे जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारिकापीठाधीश्वर श्री माधवतीर्थजी महाराज को 'पर्यटन मीमांसा' नामक ग्रन्थ लेखन में आपने पर्याप्त सहायता की। यह ग्रन्थ विलायत यात्रा की व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखा जा रहा था। जयपुर राज्य के विशेष अनुरोध पर आप 1946 विक्रम संवत् में पुनः जयपुर आये। जयपुर पहुँचते ही आप महाराज कालेज में संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुए। श्री हरिदास शास्त्री ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर आपको एक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा। वह था, सिंहली लिपि के लिखित जानकीहरण नाटक (कवि कुमारदास) को संस्कृत में अनूदित कर सम्पादित करना, जो सिंहली भाषा की ही टीका से युक्त था। इसके आधार पर आपने मूल ग्रन्थ का सम्पादन किया। इस कार्य में बहुत अधिक परिश्रम किया गया। परिणामस्वरूप आप अस्वस्थ हो गये। यह टीका केवल 15 सर्ग की ही थी और टीका के आधार पर 15 सर्गात्मक मूल ग्रन्थ का सम्पादन किया गया था। यही आपका प्रथम कार्य था। दुर्भाग्यवश इसके प्रकाशन से पूर्व ही श्री हरिदास बाबू का देहावसान हो गया और अन्त में श्री कालीपद वंद्योपाध्याय ने सन् 1983 ई. में इसे कलकत्ते से प्रकाशित करवाया।' श्री कालीपदजी के समय महाराजा कॉलेज में एम.ए. की कक्षाएँ खोली गई और आपको उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसके पश्चात् कुछ दिन आप संस्कृत कॉलेज में स्थानान्तरित किए गए और वहाँ वेदान्त आदि पढ़ाते रहे, परन्तु फिर आप महाराजा कॉलेज में ही ले लिए गए।

आप अध्ययनव्यनी तथा वैदुष्य सम्पन्न बृहस्पति के अवतार रूप माने जाते थे। आपकी विषय प्रतिपादन शैली इतनी उत्तम तथा प्रभावयुक्त थी, जो सर्वसामान्य विद्वानों में भी परिलक्षित नहीं होती। आपके गुरु श्री शिवकुमार शास्त्री ने सम्बन्ध में कहा था, "मधुसूदन तो दर्शनों में इतना प्रौढ़ हो गया है कि वह कितनी जल्दी क्या-क्या गूढ़ बातें कह जाता है, इसका अनुसंधान रखना हमें भी कठिन पड़ता है।" विद्या के इतने अगाध समुद्र होने पर भी आप निरभिमानी तथा सौजन्यपूर्ण विद्वान् थे। महाराज माधवसिंह पर आपकी विद्वत्ता की छाप तब पड़ी जबकि तत्कालीन राजज्योतिषी श्री केवलराम श्रीमाली द्वारा निर्णीत वृन्दावन में बनाये गये मन्दिर की प्रतिष्ठा के मुहूर्त पर आपने तत्कालीन ज्योतिष प्राध्यापक श्री भैया झा का समर्थन किया था तथा उसमें 40 दोष निकाले थे। इसके बाद आप अनेक बार महाराज के साथ वृन्दावन भी गये, जहाँ आपने वैष्णव सम्प्रदायाचार्यों से अनेक विषयों पर शास्त्रार्थ किया था। संवत् 1951 में आप महाराज के प्रधान राजपण्डित बनाये गये। महाराज ने आपको अपना निजी संग्रहालय 'पोथीखाना' सौंप दिया और आप इसके अधीक्षक के रूप में कार्य करने लगे। संवत् 1958 में सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के समय आप महाराज के साथ विलायत भी गये। यद्यपि विदेश यात्रा (समुद्र यात्रा) करना तत्कालजीन सामाजिक नियमों की परिधि से बहिर्भूत था, तथापि आपने 'प्रत्यन्त प्रस्थान मीमांसा' नामक ग्रन्थ द्वारा इस यात्रा को करणीय सिद्ध कर दिया। इंग्लैण्ड में ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्वान् आपकी विद्वत्ता से बहुत ही अधिक प्रभावित हुए। आप अंग्रेजी भाषा विज्ञ नहीं थे, अतः श्री सत्येन्द्रनाथ मुखर्जी आपको उसका अर्थ समझाकर प्रत्युत्तर दिया करते

थे। ऑक्सफोर्ड के विद्वान् श्री मेक्डोनाल्ड, केम्ब्रिज के विद्वान् श्री बैंडाल तथा इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी के अध्यक्ष श्री टोनी व टामस आप से बहुत ही अधिक प्रभावित थे। श्री टामस एक रसिक विद्वान् थे और पद्य रचना में भी बहुत ही पटु थे। एक दिन वार्तालाप के प्रसंग में यह प्रश्न किया था कि मधुसूदन यहाँ आए, परन्तु लक्ष्मी को कहाँ छोड़ आये? श्री ओझाजी ने तुरन्त ही पद्यमय उत्तर दिया था-

मधुसूदनस्य दृष्ट्वा सरस्वतीलालने विशेषरुचिम्।
रोषात् क्वचिदपसृतां लक्ष्मीमनुनेतुमत्र सोऽभ्यगात् ।।

(मधुसूदन की सरस्वती में विशेष आसक्ति देखकर लक्ष्मी रूठ कर चल दी, उसे ढूँढ़ने तथा मनाने के लिए ही मधुसूदन यहाँ आये हैं।)

आपने इण्डिया आफिस में वेद तथा धर्म के सम्बन्ध में एक वक्तृता दी थी। यह वक्तृता 'संस्कृत रत्नाकर' के प्राचीन अंकों में प्रकाशित भी हुई थी। यह शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली वक्तृता अत्यन्त ही अद्भुत थी। वहाँ के समाचार पत्रों में आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया था, जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

लन्दन में राज्याभिषेक के अवसर पर जितने विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित हुए हैं, उनमें एक अद्भुत हिन्दू विद्वान् की उपस्थिति भी स्मरण योग्य है, जो कि भारत को उज्ज्वल करने वाला एक देदीप्यमान प्रकाश है और जो मनुष्य रूप में वैदिक विज्ञान और दर्शनों की एक निधि है। यह व्यक्ति है 'श्री मधुसूदन ओझा', जो कि संस्कृत विद्या के एक अद्वितीय विद्वान् हैं। कैम्ब्रिज में अब तक जितने पूर्व देश के आए हैं, उनमें (सबमें) उक्त पण्डितजी का धाराप्रवाह संस्कृत में बातचीत करना यहाँ के प्राच्यविद्या विभाग के विद्वानों के लिए अधिक मनोरंजक हुआ है।'

पण्डित मधुसूदन ओझा ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर मेक्डोनाल्ड से मिले, जो कि पण्डितजी का परिचय प्राप्त कर अत्यन्त आनन्दित हुए हैं। कैम्ब्रिज के प्रोफेसर सी. बैंडाल ने पण्डितजी को निमन्त्रित किया और अपनी पत्नी सहित बैंडाल साहब ने उनका प्रेमपूर्ण स्वागत किया। पण्डितजी का धाराप्रवाह भाषण कैम्ब्रिज के प्राच्य विद्या विभाग के विद्वानों के लिए अत्यन्त मनोरंजक था, जैसा कि आजकल भारतवर्ष में बहुत कम मिलता है। इनके गम्भीर पाण्डित का यहाँ के विद्वानों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

वहाँ के विद्वानों ने ओझाजी से जर्मनी में जाकर व्याख्यान देने का बहुत अनुरोध किया किन्तु जयपुर महाराज आपको पृथक् करना नहीं चाहते थे, अतः आप न जा सके।

आपने सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के समय कुछ पद्य सम्राट् को भेंट किए थे जिनका अंग्रेजी अनुवाद

श्री सत्येन्द्रनाथ मुखर्जी ने किया था। वे पद्य संस्कृत रत्नाकर के विशेषांक वेदांक में पृ. 234-35 पर प्रकाशित हो चुके हैं। एक पद्य यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

प्राज्यं राज्यं यदेतद् ब्रिटिशपदमिहाराध्यते विश्वनाथः

सौरे वारेऽथ, नेह ब्रजति च भगवानस्तमर्कः कदाचित्।

सूर्यं संस्थाप्य मध्ये क्षितितलमखिलं तद्वशेऽत्राभिनीतं

भ्रान्तेः कृच्छादनन्तादपि ननु तपनो मोचितः सर्वथैव।। (इत्यादि)

इनके उत्तर में सम्राट् की ओर से धन्यवाद सहित आपको कोरोनेशनल मेडल प्रदान किया गया था। सन् 1906 में काशी कांग्रेस और प्रयाग कुम्भ के अवसर पर, जो श्री भारत धर्म महामण्डल के महाधिवेशन हुए थे, उनमें जयपुर के राज प्रतिनिधि के रूप में आप सम्मिलित हुए और आपने प्रयाग में 'देवता और पितृ' विषय पर एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था। श्री भारत धर्म महामण्डल ने आपको **विद्यावाचस्पति** और **महामहोपदेशक** दो पदवियाँ प्रदान की थीं। विक्रम संवत् 1962 में आपकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी आयु 40 वर्ष से भी कम थी, किन्तु आपने दूसरा विवाह नहीं किया। शास्त्र विचार में ही पूर्ण रूप से शेष समय बिताना निश्चित किया।

आत्मविज्ञान, परलोकविज्ञान आदि के कारण तो वेद का महत्त्व सभी विद्वान् मानते हैं, किन्तु आपकी सम्मति में वेद का वस्तुविज्ञान भी एक अत्युच्च कोटि पर पहुँचा हुआ है, जिनके सामने इस बीसवीं शताब्दी का बढ़ा हुआ विज्ञान भी एक कला मात्र है। प्राणविज्ञान वैदिक वस्तुविज्ञान का मुख्य आधार है, देव विज्ञान, पितृत्विज्ञान आदि उसकी शाखाएँ हैं और यज्ञ विज्ञान फलस्वरूप है। आरम्भ में यास्क कृत निरुक्त व शौनकोक्त बृहद्देवता आदि के आलोचन से आपका यह विश्वास अंकुरित हुआ और धीरे-धीरे ब्राह्मण ग्रन्थों के आलोचन से परिपुष्ट होता गया।

वैदिक विज्ञान रूपी प्रासाद का द्वारोद्घाटन कर आपने उसमें केवल प्रवेश ही नहीं किया, अपितु वहाँ अपना पूर्ण अधिकार भी जमाया और दूसरों को भी प्रविष्ट होने की सुविधा प्रदान करने में सफल हुए। आपके पास रह कर अनेक विख्यात विद्वानों ने इस सम्बन्ध में ज्ञानार्जन किया, जिनमें (1) राजगुरु पं. श्री चन्द्रदत्तजी ओझा, (2) पं. श्री सूर्यनारायण जी आचार्य, (3) श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य, (4) पं. श्री मदनलालजी व्याकरणाचार्य, (5) श्री मथुरानाथजी भट्ट, (6) पं. जयचन्द्रजी झा, (7) मोतीलालजी शास्त्री, (8) स्वामी श्री सुरजनदासजी, (9) श्री केदारनाथजी ज्योतिर्विद्, (10) पं. श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, (11) श्री नवलकिशोरजी कांकर के अतिरिक्त म.म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने 40 वर्ष तक आपके चरणों में बैठकर वैदिक

विज्ञान के रहस्यों का अध्ययन किया था।

आपका दृढ़ विश्वास था कि ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों और वेदांगों का आधार लिये बिना वैदिक विज्ञान में गति नहीं हो सकती। मन्त्र तो केवल संकेत मात्र हैं। ब्राह्मणों से ही उनका स्पष्टीकरण होता है। **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'** सिद्धान्त पर भी आपका दृढ़ विश्वास था।

आपकी एक प्रकृति थी कि आप बहुत से ग्रन्थों का लिखना साथ-साथ प्रारम्भ किया करते थे। यही कारण था कि आपके अनेक ग्रन्थ अपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में आपसे जब निवेदन किया गया था तो आपने उत्तर दिया था कि एक विज्ञान दूसरे विज्ञान की अपेक्षा रखता है। एक विषय का प्रतिपादन करते-करते उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे विषय की आवश्यकता प्रतीत हो जाती है और इसीलिए उसका विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। आपने वेद और वेदांगों पर समीक्षा नाम से अनेक ग्रन्थों का लेखन प्रारम्भ किया था, क्योंकि उपलब्ध ग्रन्थ वैदिक विज्ञान की शैली से बहुत दूर चले गये थे।

विक्रम संवत् 1993 में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से जयपुर के गण्यमान्य सरदारों व विद्वानों और सेठ-साहूकारों की स्वागत समिति के तत्त्वावधान में आपके 70वें वर्ष के उपलक्ष्य में आचार्य प्रवर गोस्वामी श्री गोकुलनाथ जी महाराज शुद्धाद्वैत सम्प्रदायाचार्य बम्बई के सभापतित्व में रामनिवास बाग के अल्बर्ट हॉल में हीरक जयन्ती मनाई गई थी। इस अवसर पर संस्कृत रत्नाकर का एक विशेषांक वेदांक और अभिनन्दन पत्र आपको समर्पित किया गया था। वास्तव में आप इस सम्मान के योग्य थे।

विक्रम संवत् 1996 भाद्रपद शुक्ला 15 को केवल दो-तीन दिन ही अस्वस्थ रह कर श्री ओझाजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। स्थानीय सिविल सर्जन का कथन था कि यह दिमागी उत्कट परिश्रम के हृदय पर आघात होने के कारण हुआ था। आपके एकमात्र पुत्र श्री प्रद्युम्न झा उन दिनों अलवर नरेश के पास थे। आपने अपने अन्तिम समय में स्वरचित ग्रन्थों के प्रकाशित करने की एकमात्र इच्छा अपने पुत्र से प्रकट की थी। श्री प्रद्युम्न झा ने कुछ ही ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया और उनके दिवंगत होने के पश्चात् अब उनकी अप्रकाशित रचनाएँ अस्त-व्यस्त हो गई हैं। जिस दिन आपका स्वर्गारोहण हुआ था अनेक पत्रों में 'वैदिक विज्ञान का सूर्य अस्त' शीर्षक से समाचार प्रकाशित हुए थे।

विद्यावाचस्पति श्री ओझाजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ दो महाखण्डों में विभक्त हैं- (1) निगम तथा (2) आगम। निगम के अन्तर्गत चार महाग्रन्थ हैं- (1) ब्रह्मविज्ञान, (2) यज्ञविज्ञान, (3) पुराण समीक्षा और वेदांग समीक्षा। इनके अन्तर्गत क्रमशः सात, चार, तीन और चार कुल अट्ठारह महाग्रन्थ हैं। इन महाग्रन्थों के अन्तर्गत क्रमशः चालीस, बीस, अट्ठारह और तीस इस प्रकार कुल 108 ग्रन्थ हैं। आगम खण्ड के अन्तर्गत आगम रहस्य शीर्षक के अन्तर्गत 6 महाग्रन्थ हैं,

जिसके अन्तर्गत 120 अवान्तर ग्रन्थ हैं। आगम और निगम दोनों महाखण्डों के अवान्तर ग्रन्थों सहित कुल ग्रन्थों की संख्या 288 है। इनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है-

निगम महाखण्ड

1. ब्रह्मविज्ञान - 7 महाग्रन्थ- अवान्तर 40 ग्रन्थ

(क) दिव्यविभूतिः (महाग्रन्थ) विज्ञानेतिवृत्तपंजिका (5)

(1) जगद्गुरुवैभवम् (ब्रह्मरहस्यम् भौमब्रह्मोपाख्यानम्)

(2) महर्षिकुलवैभवम् (ऋषिरहस्यम् भौमार्षेयोपाख्यानम्)

(3) स्वर्गसन्देशः (देवरहस्यम् भौमदेवोपाख्यानम्)

(4) इन्द्रविजयः (भारतवर्षीयार्योपाख्यानम्)

(5) दशवादरहस्यम् (दैवयुगीय दशविज्ञानोपपादनम्)

(ख) उक्थवैराजिकम् (महाग्रन्थ) - दैवयुगीय विज्ञानदशिका (10)

(1) सदसद्वादः (2) रजोवादः (3) व्योमवादः

(4) अपरवादः (5) आवरणवादः (6) अम्भोवादः

(7) अमृतमृत्युवादः (8) अहोरात्रवादः (9) दैववादः

(10) संशयतदुच्छेदवादः

(ग) आर्यहृदयसर्वस्वम् (महाग्रन्थ) - हृदयपंचिका (5)

(1) ब्रह्महृदयम् (आर्षेयी वेदसंहिता 18 विधा)

(2) ब्राह्मणहृदयम् (ब्राह्मणोक्तविज्ञानसमुच्य)

(3) उपनिषद्हृदयम् (उपनिषत् परिष्कारः) (गीताविज्ञान भाष्य)

(4) गीताहृदयम् (भगवद्गीतोपनिषद् विज्ञानभाष्यम्) (दो भागों में)

(5) ब्रह्मसूत्रहृदयम् (शारीरक विज्ञानम्) (दो भागों में)

(घ) निगमबोधशिक्षा (महाग्रन्थ) - शिक्षापंजिका (5)

(1) निगद्वती (2) गाथावती (3) आख्यानवती

(4) निरुक्तिमती (5) पथ्यास्वस्तिर्वेदमातृका

(ङ) विज्ञानप्रवेशिका (महाग्रन्थ) - उपदेशपंचिका (5)

(1) ब्रह्मद्रवी (2) ब्रह्मधारा

(3) विज्ञानविद्युत् (4) विज्ञानपरिष्कारः

(5) दर्शनपरिष्कारः

(च) विज्ञानमधुसूदनः (महाग्रन्थ) - विज्ञानपंचिका (5)

(1) ब्रह्मविनयः (2) ब्रह्मसमन्वयः (3) ब्रह्मप्राजापत्यम्

(4) ब्रह्मोपपत्तिः (5) ब्रह्मचतुष्पदी

(छ) साइंसप्रदीपः (महाग्रन्थ) पाश्चात्यविज्ञानपंचिका (5)

(1) भौतिक साइंस प्रदीपिका, अग्निविद्युत ईथर विज्ञान

(2) यौगिक साइंस प्रदीपिका, मौलिक पदार्थ विद्या, फिजिक्स

(3) शारीरिक साइंस, रासायनिक पदार्थ विद्या कैमिस्ट्री

(4) दृग्विज्ञान-प्रदीपिका (5) वस्तुसमीक्षा

2. यज्ञविज्ञान - 4 महाग्रन्थ - अवान्तर 20 ग्रन्थ

(क) निवित् कलापः (महाग्रन्थ) - निवित् पंचिका (5)

(1) वैश्वरूप-निवित् (2) ऋषि-निवित् (3) देवता-निवित्

(4) आत्म-निवित् (5) यज्ञ-निवित्

(ख) यज्ञमधुसूदनः (महाग्रन्थ) - यज्ञानुबन्धपंचिकादि (8)

(1) यज्ञविहाराध्याय (2) स्मार्त्तकुण्ड समीक्षाध्याय

(3) यज्ञोपकरणाध्याय (4) मन्त्रप्रचरणध्याय

(5) आत्माध्याय (6) देवताध्याय

(7) यज्ञविटपाध्याय (8) कर्मानुक्रमणिकाध्याय (छन्दोऽभ्यस्ताध्याय)

(ग) यज्ञविनय-पद्धतिः (महाग्रन्थ) - उपदेशिकद्वयी (2)

(1) यज्ञकौमुदी (सोमाध्याय-यजुः संहिता दशाध्यायी-मधुवृत्तिः)

(2) चयनाध्याय (यजुः संहिता अष्टाऽध्यायी चयनविद्या)

(घ) प्रयोगपारिजातः (महाग्रन्थ) - प्रकृति पंचिका (5)

(1) आधान-प्रक्रिया (2) प्राक् सौमिक प्रक्रिया

(3) एकाह-प्रक्रिया (4) अहीन-प्रक्रिया

(5) सत्त्रप्रक्रिया

3. पुराण समीक्षा-3 महाग्रन्थ - अवान्तर 18 ग्रन्थ

(क) विश्वविकासः (महाग्रन्थ) - पूर्वषड्लक्षणी (6)

(1) मन्वन्तर-निर्धारः (कालविभाग) (2) विश्वसृष्टि सन्दर्भः (सृष्टिप्रसंग)

(3) आर्य भुवनकोश (भूगोलविद्या) (4) ज्योतिश्चक्रसंस्थानम् (विज्ञान-खगोलविद्या)

(5) वैज्ञानिकोपाख्यान (विज्ञान) (6) वंशमातृका (सूर्यचन्द्रादि राजवंशानुक्रमणिका)

(ख) देवयुगाभासः (महाग्रन्थ) - मध्यमषड्लक्षणी (6)

(1) देवासुरख्याति (देवारु द्वादश युद्ध प्रसंग)

(2) यादवख्याति (यदुवंशीय कृष्णशाखा राजचरित)

(3) राघवख्याति (सूर्यवंशीय महाराजचरित)

(4) हैहयख्याति (यदुवंशीय हैहयशाखा राजचरित)

(5) पौरवख्याति (पुरुवंशीय राजचरित)

(6) अक्रमख्याति (विप्रकीर्ण-राजादि-चरित-संचय)

(ग) प्रसंगचर्चितकम् (महाग्रन्थ) - उत्तरषड्लक्षणी (6)

(1) कथानकसमुच्चय (ख्यातिका संग्रह)

(2) दैवतमीमांसा (भावस्फोट)

(3) वेदपुराणादि-शास्त्रावतारः (शास्त्रनिर्माणतिहास)

(4) कल्पशुद्धिप्रसंगः (धर्मपरिष्कार)

(5) परीक्षाप्रसंगः (शिल्पकला-प्रचार)

(6) पुराणपरिशिष्ट (संकीर्ण नामाविषयाख्यानम्)

4. वेदांगसमीक्षा- 4 महाग्रन्थ - अवान्तर 30 ग्रन्थ

(क) वाक् पदिका (महाग्रन्थ) - वर्णाक्षरपदवाक्यभाषानिरुक्ति पंचिका (5)

(1) वर्णसमीक्षा (पथ्या स्वस्ति) (2) छन्दः समीक्षा (3) वैदिक कोश

(4) वैदिकशब्दतालिका (5) व्याकरणविनोद

(ख) ज्योतिश्चक्रधर (महाग्रन्थ) - ताराग्रहगोलहोरागोचर निरुक्ति पंचिका (5)

(1) ताराविज्ञान (2) गोलविज्ञान (3) होराविज्ञान

(4) कादम्बिनी-सौदामिनीव्याख्यासहित (वृष्टि-विद्या) (5) लक्षणविज्ञान

(ग) आत्मसंस्कारकल्पः (महाग्रन्थ) स्मार्त्तसामयाचारिकधर्मप्रयोगनिरुक्ति दशिका (10)

(1) शुद्धिविज्ञान पंचिका (आशौच पंचिका) (2) धर्मविज्ञान पंचिका

(3) व्रतपंचिका (4) व्यवहार व्यवस्थापिका

(5) श्राद्ध परिष्कारः

विशेष - इस आत्मसंस्कारकल्प के उपर्युक्त प्रथम चार ग्रन्थों में पाँच पाँच अवान्तर ग्रन्थ हैं और संख्या पाँच श्राद्ध परिष्कार के तीन अवान्तर ग्रन्थ। इस प्रकार इस महाग्रन्थ के 23 अवान्तर ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है पर नाम निर्देश नहीं।

(घ) परिशिष्टानुग्रहः (महाग्रन्थ) - विप्रकीर्णविषयसंग्रह दशिका (10)

(1) शास्त्र परिचय (कौषीतकोपनिषद् व ऐतरेयोपनिषद्) (2) वेदार्थभ्रमनिवारण

(3) वेदधर्मव्याख्यान पंचिका (4) प्रत्यन्त प्रस्थानमीमांसा (समुद्र यात्रा निर्णय)

(5) गोत्रप्रवर-पताका (6) जातिपंचिका

(7) सम्प्रदायपंचिका (8) इन्द्रध्वजोत्थापन पद्धतिः

(9) धर्मतत्त्वसमीक्षा (धर्मसम्बन्धी व्याख्या) इत्यादि

आगम महाखण्ड

इस महाखण्ड में 6 महाग्रन्थ हैं जिनमें 120 अवान्तर ग्रन्थ हैं। इन 120 ग्रन्थों की विस्तृत सूची उपलब्ध नहीं है। केवल 6 महाग्रन्थों का ही नामोल्लेखन प्राप्त होता है। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. सिद्धान्तागमरहस्यम् 2. संहितागमरहस्यम् 3. डामरागमरहस्यम्

4. यामलागमरहस्यम् 5. कल्पागमरहस्यम् 6. तन्त्रागमरहस्यम्

इस प्रकार आपके कुल 254 ग्रन्थों का उल्लेख वेदांक (संस्कृत रत्नाकर विशेषांक) संवत् 1993 में प्रकाशित तथा 'श्री मधुसूदन वैदिक विज्ञानक प्रकाशक कार्यालय' के सूचीपत्रानुसार किया गया है।

इनके अतिरिक्त आपके अनेक महत्त्वपूर्ण लेख पदनिरुक्तम् तथा शब्दविकृतिहेतवः शीर्षकों से संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों (1904 ई.) में प्रकाशित हुए हैं। आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी होने के साथ ही इस युग के अद्वितीय विद्वान् थे। आपके अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन अत्यावश्यक है, जिनकी समीक्षा कर आपके विज्ञान को सही रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।